स्कूली शिक्षा में जनजातियों की भागीदारी

रूमानियत से परे कुछ विचारणीय मुद्दे

अमित कोहली

सभी को शिक्षा मिले यह विचार काफ़ी मायने रखता है लेकिन इसके साथ जुड़े महत्त्वपूर्ण सवाल यह हैं कि क्या सभी को एक जैसी शिक्षा मिले? और यह भी कि शिक्षित करने के माध्यम, तरीक़े कैसे हों? इस लेख में लेखक देश में जनजातियों के लिए किए गए शिक्षा के प्रयासों को सामने रखते हैं और कहते हैं कि ऐसे कई सरकारी और ग़ैर-सरकारी प्रयासों के बावजूद इन समुदायों के अधिकांश बच्चे उच्च शिक्षा तक नहीं पहुँच पाते। वे इस सन्दर्भ में स्कूल के मौजूदा ढाँचे, उसमें अपनाए जाने वाले शिक्षण के तरीक़ों, शिक्षण की विषयवस्तु आदि पर चर्चा करते हैं और कहते हैं कि जनजातियों की शिक्षा को लेकर इन सभी पर पुनर्विचार की ज़रूरत लगती है। लेख के अन्त में वे इस दिशा में क्या किया जा सकता है उसपर भी अपने विचार रखते हैं। सं.

भारत के 28 राज्यों व 8 संघ क्षेत्रों के तक़रीबन 15 फ़ीसदी भू-भाग पर अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं। जनजातियों की आबादी भारत की कुल जनसंख्या का 8.6 फ़ीसदी है[1], जो मैदान, जंगल, पहाड़ जैसे विविध भौगोलिक और पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में रहती है। कुल ग्रामीण आबादी का 11.3 फ़ीसदी और शहरी आबादी का 2.8 फ़ीसदी हिस्सा अनुसूचित जनजातियाँ हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी सुविधाएँ, आदि पैमानों पर जनजातियाँ भारत के अन्य सामाजिक समुदायों से पिछड़ी हुई हैं। इस पिछड़ेपन के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारण हैं। जनजातीय समुदायों की बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच, आय, सामाजिक-आर्थिक हैसियत, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मानकों पर पर्याप्त भिन्नता नज़र आती है।

विकास की मुख्यधारा और ‘उनका’ सम्मिलन

औपनिवेशिक काल में अँग्रेज़ों ने जनजातियों के विकास के लिए कोई ख़ास प्रयास नहीं किए। रेल की पटरियाँ बिछाने और औद्योगिक इस्तेमाल के लिए वनों की बेतहाशा कटाई हुई। खेती का रकबा बढ़ाने के लिए भी जंगल काटे गए। जनजातीय समूहों के विरोध को बेरहमी से कुचला गया। अप्रत्यक्ष शासन और सैनिक दमन की वजह से जनजातीय बहुल क्षेत्रों में कृषि, वाणिज्य और उद्योग के साथ-साथ स्वास्थ्य और शिक्षा का वैसा आधुनिकीकरण नहीं हुआ, जैसा अँग्रेज़ शासित अन्य प्रान्तों का हुआ। हालाँकि, ईसाई मिशन ने जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य के ज़रिए जनकल्याण के काम किए। मोहनदास करमचन्द गाँधी (1869-1948) ने अपनी 18 बिन्दुओं वाली रचनात्मक कार्यों की सूची में जनजातियों के विकास को शामिल किया। गाँधी के समकालीन ठक्कर बप्पा (1869-1951) अस्पृश्यता निवारण पर काम करते हुए भील जनजाति के कल्याण के लिए भी लम्बे समय तक जुटे रहे। पेशे से वकील शरद चन्द्र राय (1871-1942) ने जनजातियों के अधिकारों की रक्षा के लिए बहुत काम किया। मिशनरी से मानवविज्ञानी बने वेरियर एल्विन (1902-1964) ने जनजातीय जीवन के कई छिपे हुए पहलुओं

1. चन्द्रमौली, सी (2013, मई)। *शैड्यूल्ड ट्राइब्स इन इंडिया — एज़ रीविल्ड इन सेंसस 2011*। गृह मंत्रालय, भारत सरकार।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

को उजागर करके मुख्यधारा के लोगों को चकित किया। दीर्घकालीन शोध के आधार पर एल्विन का मानना था कि जनजातियों का विकास उनकी अपनी प्रतिभा-योग्यता की धारा को लेकर होना चाहिए, उसके विपरीत या समानान्तर नहीं। जबकि गोविन्द सदाशिव घुर्ये (1893-1983) जैसे समाजशास्त्रियों ने इस विचार का विरोध करते हुए कहा कि जनजातियों का मुख्यधारा में पूर्ण सम्मिलन ही उनके कल्याण का मार्ग है।[2] वेरियर एल्विन ने आज़ादी के बाद भारत की नीतियों पर गहरा असर डाला। जवाहरलाल नेहरू ने उनके विचारों को स्वीकार करते हुए जनजातीय विकास की योजनाएँ बनाईं, जिनमें परम्परा, रीति-रिवाज और आचार-व्यवहार को बरक़रार रखते हुए मुख्यधारा के साथ नियंत्रित और योजनाबद्ध सम्मिलन का रूमानी विचार अन्तर्निहित था, जो आज़ादी के बाद तमाम नीतियों और योजनाओं में एक सम्भ्रम के रूप में नज़र आता है।

जनजातीय परम्परा, जीवन शैली, संस्कृति आदि का जितना भी गुणगान किया जाए, समूचे राष्ट्र के लिए जब योजनाएँ बनती और लागू की जाती हैं तो 'व्यापक हित' सामने रखा जाता है। हितों में टकराव की स्थिति में 'व्यापक' का ध्यान रखने के क्रम में 'सीमित' की उपेक्षा हो जाती है। विकास योजनाओं में जनजातियों की यही गति हुई है। आज अधिकांश जनजातियों का न तो तथाकथित मुख्यधारा में पूर्ण सम्मिलन हो पाया है और न ही जनजातीय संस्कृति, जीवन शैली और मूल्यों-मान्यताओं को आधुनिकीकरण के प्रभावों से सुरक्षित रखा जा सका है।[3]

विकास का अमल

विविध जनजातियाँ सामाजिक-सांस्कृतिक व आर्थिक विकास के अलग-अलग पायदानों पर हैं। किन्हीं क्षेत्रों में कुछ जनजातीय समूह आधुनिक खेती को अंगीकार कर चुके हैं तो कहीं किसी अंचल में अब भी झूम खेती या शिकार व संग्रहण जारी है। शिक्षा तक सबकी पहुँच और उसका लाभ लेने के मामले में भी यह फ़र्क़ है। उचित होगा कि इस विविधता को ज़ेहन में रखकर ही हम स्थिति का विश्लेषण करें।

आज़ादी के साढ़े छह दशक बीत जाने के बाद भी अनुसूचित जनजातियों की लगभग आधी आबादी तक बिजली नहीं पहुँची है।[4] बिजली के न होने से बच्चों की पढ़ाई प्रभावित होती है और रेडियो-टेलीविज़न, मोबाइल फ़ोन जैसे संचार माध्यमों का उपयोग असम्भव हो जाता है। कोरोना महामारी के दौर में ऑनलाइन शिक्षण तक अनुसूचित जनजातियों की पहुँच कम होने का एक कारण बिजली का न होना भी है। बुनियादी सुविधाओं के अभाव या अलभ्यता की वजह से उस समुदाय को अतिरिक्त ऊर्जा, समय और / या धन ख़र्च करना पड़ता है, जो अन्यथा बचाया जा सकता था और उसका उपयोग शिक्षा प्राप्त करने, नए कौशल सीखने व जीवन स्तर उन्नत बनाने के लिए किया जा सकता था। इस अर्थ में बुनियादी सुविधाओं का अभाव अनुसूचित जनजाति जैसे वंचित समुदायों को तंगहाली के दुष्चक्र में उलझाए रखता है और सकारात्मक सामाजिक गतिशीलता के मौक़े छीन लेता है। इसे हम अशिक्षा और वंचना के पुनरुत्पादन का भँवर भी कह सकते हैं।

2. सहाय, बी एन (1998)। 'एप्रोच टू ट्राइबल वेलफ़ेयर इन पोस्ट इन्डिपेन्डेन्स एरा' *इंडियन एन्थ्रोपोलॉजिस्ट,* 28(1), 73-81।
3. संविधान का 73वाँ संशोधन, पंचायत (अनुसूचित क्षेत्र में विस्तार) अधिनियम, 1996।
4. चन्द्रमौली, सी (2013, मई)। *शैड्यूल्ड ट्राइब्स इन इंडिया — एज़ रीविल्ड इन सेंसस 2011।* गृह मंत्रालय, भारत सरकार।

तालिका 1 : विविध शैक्षिक मापदण्डों पर अनुसूचित जनजातियों की स्थिति[5]

संकेतक	सम्पूर्ण भारत	अनुसूचित जनजाति
साक्षरता दर (कुल)	73.0%	59.0%
सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) (उच्चतर शिक्षा, 18–23 वर्ष)[6]	26.3%	17.2%
कक्षा बारहवीं पास करने की दर (2016) (सभी बोर्ड)	77.9%	68.2%
कक्षा दसवीं पास करने की दर (2016) (सभी बोर्ड)	78.7%	65.0%

तालिका 2 : अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों का सकल नामांकन अनुपात व शालात्याग की दर (2016–17)[7]

स्तर	सकल नामांकन अनुपात	शालात्याग की दर (बालक)[8]	शालात्याग की दर (बालिका)[9]
प्राथमिक – कक्षा 1–5 (6–10 वर्ष)	101.6	8.57	8.51
उच्च प्राथमिक – कक्षा 6–8 (11–13 वर्ष)	95.7	9.46	9.70
माध्यमिक – कक्षा 9–10 (14–15 वर्ष)	73.5	8.86	8.90
वरिष्ठ माध्यमिक– कक्षा 11वीं–12वीं (16–17 वर्ष)	42.7	27.41	26.51
उच्च शिक्षा (18–23 वर्ष)	15.4	8.94	7.87

क्रमशः अगली कक्षाओं में जाते हुए सकल नामांकन घटने और शालात्याग की दर बढ़ने के आर्थिक कारण ज़रूर होते हैं, लेकिन यह कारक हर जाति समूह के ग़रीब विद्यार्थियों पर लागू होगा। जबकि अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए ग़रीबी के अलावा एक बड़ा कारण शाला-संस्कृति से अलगाव भी है। अनुसूचित जनजातियों के जो विद्यार्थी तमाम प्रतिकूलताओं के बावजूद 10वीं और 12वीं तक शालाओं में बने रहते हैं, उनमें से क्रमशः 65 और 68.2 फ़ीसदी बच्चे ही बोर्ड परीक्षाओं में सफल हो पाते हैं। कुल विद्यार्थियों के औसत से इन आँकड़ों का फ़र्क़ निर्विवाद रूप से प्रमाणित करता है कि अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए शाला में बने रहना और बोर्ड परीक्षाओं में सफल होना भारत के औसत विद्यार्थी की तुलना में कठिन है।

हर पैमाने पर हम देख सकते हैं कि अनुसूचित जनजातियाँ सम्पूर्ण भारत से पिछड़ी हुई हैं। अकादमिक पिछड़ेपन के कारणों की तह तक पहुँचने के लिए हमें जनजातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं के साथ-साथ उनके विकास के लिए किए जा रहे प्रयासों में अन्तर्निहित मान्यताओं, धारणाओं और समझ को भी देखना होगा।

स्कूली शिक्षा : आधुनिकीकरण की मुहिम

बकौल *इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटैनिका,* आधुनिक होने का अर्थ है वैज्ञानिक सोच और तार्किकता का उत्तरोत्तर विकास, नौकरशाही का आविर्भाव, तेज़ी से शहरीकरण, राष्ट्र-राज्यों का उदय और वित्तीय लेनदेन का विकास।[10]

ऐतिहासिक वास्तविकता है कि स्कूल नामक संस्था का जन्म, विकास एवं सार्वभौमिकरण औद्योगीकरण के समानान्तर हुआ है। इसका उद्देश्य नौनिहालों को आधुनिक सामाजिक-

5. जनजातीय कार्य मंत्रालय (2021)। वार्षिक रिपोर्ट 2019–20। भारत सरकार।
6. उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2019, अगस्त)। *ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन 2018–19*।
7. जनजातीय कार्य मंत्रालय (2021)। वार्षिक रिपोर्ट 2019–20। भारत सरकार।
8. कक्षावार आँकड़े, उम्र लागू नहीं, आँकड़े प्रतिशत में।

राजनैतिक मूल्यों में दीक्षित करना, आधुनिक औद्योगिक उत्पादन, वितरण एवं उपभोग की प्रक्रिया में रचनात्मक योगदान देने के लिए प्रशिक्षित करना और राष्ट्र-राज्य की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में विचारशील और सहभागी नागरिक की भूमिका निभाने के लिए तैयार करना है। समाज के हर वर्ग, हर हिस्से तक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने वाले तमाम अभियान समाज को आधुनिक बनाने की मुहिम चला रहे हैं। किसी भी राष्ट्र-राज्य में लोकतांत्रिक शासन पद्धति की सफलता इस बात पर निर्भर होती है कि मतदाता एक 'व्यक्ति' के रूप में मतदान करे। फ्रांसीसी क्रान्ति के बहुचर्चित दस्तावेज़ *पुरुष एवं नागरिक अधिकार घोषणापत्र* के सभी सत्रह बिन्दु व्यक्ति और व्यक्ति के रूप में नागरिक की बात करते हैं। इसी तरह, एडम स्मिथ (1723-1790) अपनी पुस्तक *एन इन्क्वायरी इन्टू द नेचर एंड कॉज़ेज़ ऑफ़ द वेल्थ ऑफ़ नेशन्स* (1776) में व्यक्ति और बाज़ार के सम्बन्धों पर कहते हैं कि आर्थिक समृद्धि के लिए 'स्वतंत्र व्यक्ति' होना बेहद ज़रूरी है। यानी, लोकतंत्र में मतदाता के रूप में और बाज़ार में ख़रीददार व श्रमिक के रूप में 'व्यक्ति' का अस्तित्व अपरिहार्य है। जबकि जनजातियों में समुदाय और नातेदारी महत्त्वपूर्ण है, सांस्कृतिक रूप से वे स्वयं का विचार एक 'व्यक्ति' के रूप में नहीं कर सकते।[11] स्कूल और विद्यार्थी, दोनों की सफलता इसी में है कि भोजन जुटाने या खेती करने के तौर-तरीक़े और रहन-सहन जैसी भौतिक तब्दीलियों से लेकर भाषा और सोच विचार के ढाँचों जैसी अमूर्त मानसिक प्रक्रियाओं और व्यक्तिवाद व स्वतंत्रता जैसे मूल्यों तक में 'आधुनिकता' के अनुकूल परिवर्तन घटित हों।

समाज को 'आधुनिक' बनाने के स्कूल के मिशन और जनजातीय विद्यार्थी की सांस्कृतिक पहचान के बीच एक द्वन्द्व नज़र आता है। ऐसा नहीं है कि इस द्वन्द्व को पहचाना नहीं गया है या समाधान की कोशिशें नहीं की जा रही हैं। व्यक्ति, संस्था और शासन के स्तर पर इसपर विचार किया जा रहा है और स्कूली शिक्षा को जनजातियों से आने वाले विद्यार्थियों के लिए भी समावेशी बनाने की कोशिशें की जा रही हैं।

किसका, किसमें समावेश ?

समावेशी शिक्षा एक खुली और व्यापक संकल्पना है, जिसमें विविध सोच, समझ और पद्धतियाँ शामिल हैं। मोटेतौर पर कहा जा सकता है कि समाज के विविध तबक़ों के बच्चों को स्कूल में परायापन न लगे, इसलिए की जाने वाली सुविचारित कोशिशों को समावेशी शिक्षा कहते हैं।

जो समुदाय या उनके भाग, 'पिछड़े' माने जाते हैं, उन्हें आधुनिकता की चौखट में आवृत्त करने का सुचिन्तित और संवेदनशील प्रयास समावेशी शिक्षा के रूप में फलीभूत होता है। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों से लेकर शाला की कार्य संस्कृति तक सभी में अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के समावेशीकरण का अर्थ उन्हें शाला के व्यापक उद्देश्यों के अनुकूल बनाना और उनके जीवन के हर पहलू का आधुनिकीकरण करना है। इस रूप में समावेशी शिक्षा 'पिछड़े समुदायों' के आधुनिकीकरण का लक्ष्य साधने के औज़ार के रूप में काम करती है। यह सवाल पूछा नहीं जाता कि स्कूली शिक्षा में हम किसका समावेश कर रहे हैं और किस उद्देश्य से? आधुनिकता के बहते प्रवाह में यह सवाल पूछना भी बेमानी हो जाता है कि वह समाज ख़ुद समावेशीकृत होना चाहता भी है या नहीं? कोई नहीं पूछता कि एक संस्था के रूप में शाला ख़ुद जनजातीय मूल्यों, मान्यताओं और जीवनदृष्टि के अनुकूल होने या स्वयं का जनजातीयकरण होने देने के लिए प्रस्तुत है या नहीं? क्या समावेशीकरण एकतरफ़ा हो सकता है?

9. कक्षावार आँकड़े, उम्र लागू नहीं, आँकड़े प्रतिशत में।
10. स्निडेयर, एस एल (2016, मई 20)। मॉडर्निटी. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका। https://www.britannica.com/topic/modernity.
11. जनजातीय समूहों में मौजूद नातेदारी को सामन्ती ढाँचे की नातेदारी से अलग देखे जाने की ज़रूरत है। जनजातियों में मनुष्यों का आपसी सम्बन्ध शोषण या शासन पर आधारित नहीं होता, जबकि सामन्ती व्यवस्था इसी पर टिकी होती है।

भाषा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ' विषय पर गठित *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र* (जून 2010) कहता है :

> *"यद्यपि भारत में राज्यों की स्थापना भाषा के आधार पर हुई है तो भी अजजा की राजनीतिक शक्तिहीनता ने जनजातीय भाषाओं पर आधारित राज्यों के निर्माण की रोकथाम कर दी। बड़े राज्यों में उन्हें अल्पसंख्यक का दर्जा देकर सीमित कर दिया गया और विद्यालय में राज्य की भाषा सीखने को बाध्य किया गया।"* [12]

आज़ाद भारत में, उत्तर-पूर्वी राज्यों को छोड़कर, जनजातीय अस्मिता और उनकी भाषा को स्कूली शिक्षा में सम्मानजनक स्थान नहीं मिला है। भाषाओं के आधार पर राज्यों के गठन की वजह से जनजातीय भाषाएँ हाशिए पर सिमट गईं। अकसर बच्चों के घर की भाषा अलग होने की वजह से अकादमिक क्षमताओं के विकास के साथ-साथ स्कूल में टिके रहने की अवधि पर नकारात्मक असर पड़ता है। समाधान के रूप में बच्चों के घर की भाषा को स्कूल में जगह देने की कोशिशें की जा रही हैं।

बहुभाषी कक्षा को समावेशी व समृद्ध कक्षा माना जाता है। ग्रामीण पृष्ठभूमि के शिक्षक-शिक्षिका आमतौर पर दो भाषाओं में संवाद कर सकते हैं, इसमें अधिकांशतया एक स्कूल की माध्यम भाषा होती है और दूसरी उनके घर की भाषा। स्कूली शिक्षा के प्रसार की वजह से द्विभाषी शिक्षकों की तादाद सिमटती जा रही है। अधिकांश जनजातीय क्षेत्रों में एक ही जनजाति

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

सघन रूप से निवास नहीं करती। जहाँ भील हैं वहाँ भिलाला भी रहते हैं, जहाँ गोण्ड हैं वहाँ कोरकू और भारिया भी हैं। घर से विविध भाषाएँ लेकर आने वाले बच्चे वास्तविक अर्थ में बहुभाषी कक्षा की रचना करते हैं। विरले ही ऐसी शिक्षिकाएँ होंगी जो तीन या अधिक भाषाओं में बातचीत कर सकती हैं। ऐसे में बहुभाषी शिक्षण प्रक्रिया अकादमिक विमर्श का एक महँगा अलंकार सिद्ध होती है, जो जनजातीय इलाक़ों के हर सार्वजनिक स्कूल को मुहैया करा पाना नामुमकिन है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ' विषय पर गठित *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र* (जून 2010) तस्दीक करता है कि भारत के कई इलाक़ों में ऐसे गाँव हैं जहाँ एक से अधिक जनजातीय भाषाएँ बोली जाती हैं। लेकिन फ़ोकस समूह की सिफ़ारिश बहुभाषी कक्षा के अव्यवहारिक अमल की न होकर द्विभाषी कक्षा की है।[13] हालाँकि, यही फ़ोकस समूह जनजातीय भाषाओं के सम्मान की ज़रूरत को रेखांकित करते हुए कहता है : "अजजा की भाषाओं की यह अवमानना अजजा के ज्ञान और सांसारिक दृष्टि की अवमानना का भी कारण बनती है।"[14]

---

12. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली। (2010)। 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ'। *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र,* 26।
13. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली। (2010)। 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ'। *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र, 32।*
14. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली। (2010)। 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ'। *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र,* 26-27।

बहुभाषी शिक्षण प्रक्रिया में अन्तर्निहित है कि शुरुआती वर्षों में बच्ची को शाला के माहौल, संस्कृति, आदि से जुड़ने में मदद की जाए। जनजातीय भाषा परिवेश की बच्ची को 2-3 वर्षों के भीतर स्कूल की माध्यम भाषा आत्मसात करनी होगी, इसके अलावा उस बच्ची के पास कोई विकल्प नहीं है क्योंकि अगली कक्षाओं में राज्य की माध्यम भाषा और उच्च शिक्षा में अँग्रेज़ी का ज्ञान अनिवार्य होगा। प्राथमिक स्तर के बाद बहुभाषी शिक्षण की गुंजाइश नहीं है। बहुभाषी शिक्षण प्रक्रिया के ज़रिए बच्चों को घर की भाषा छोड़कर स्कूल की भाषा आत्मसात कराने की अस्वाभाविक और कष्टकारी प्रक्रिया को सरल बनाने की कोशिश की जाती है। इस अर्थ में बहुभाषी शिक्षण पद्धति विविध भाषाओं को बोलने वाले बच्चों को स्कूल की माध्यम भाषा तक लेकर आने का एक फ़नलनुमा औज़ार है। एक तरह से यह कुनैन की कड़वी गोली को मीठी चाशनी में लपेटकर खाने लायक़ बनाने की प्रक्रिया भी है।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

बच्ची के घर की भाषा या बहुभाषी शिक्षण पद्धति के ज़रिए प्राथमिक कक्षाएँ मनोरंजक ज़रूर हुई हैं। ऊपर हमने सकल नामांकन दर व शालात्याग और बोर्ड परीक्षाओं में प्रदर्शन को देखा कि कैसे प्राथमिक शिक्षा का चरण पूरा करते ही जनजातीय विद्यार्थियों का शाला में बने रहना और अच्छा प्रदर्शन करना अधिकाधिक मुश्किल होता जाता है। आँकड़े जो तस्वीर दिखाते हैं, उसके पीछे बेशक अनेक कारण हैं और उसे किसी एक वजह में समेट देना उचित नहीं। लेकिन, आँकड़े यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि जनजातीय विद्यार्थियों के शाला में समावेशन के माक़ूल नतीजे नहीं मिल रहे हैं।

उच्चतर कक्षाओं में पाठ की भाषा उत्तरोत्तर परिमार्जित होती जाती है। जनजातीय समुदायों से आने वाले बच्चों के घर और परिवेश में उस परिमार्जित भाषा का न तो कोई स्थान होता है, न अवसर और उपयोगिता, लिहाज़ा ऊँची कक्षाओं में जनजातीय विद्यार्थियों के लिए भाषा की कठिनाई बढ़ती जाती है और वे विषयवस्तु समझ नहीं पाते। उच्चतर कक्षाओं में जनजातियों के विद्यार्थियों का प्रदर्शन क्रमशः कमज़ोर होने का यह एक बड़ा कारण है। ज़रूरी है कि यहाँ भाषा को सिर्फ़ घर की भाषा बनाम स्कूल की भाषा या व्यवहारिक भाषा बनाम मानक भाषा के सीमित सन्दर्भ में देखने के बदले भाषा के भीतर मौजूद सत्ता और वर्ग विभाजन की परतों को भी देखने की कोशिश की जाए। बासिल बर्नस्टाइन (1924-2000) ने भाषा के कोड सिद्धान्त पर शोध किया है। भाषा में अर्थबोध के ढाँचों को वे 'कोड' कहते हैं। शोध के आधार पर बर्नस्टाइन कहते हैं कि श्रमिक वर्ग की भाषा सन्दर्भ-आधारित और विशिष्टतापरक होती है, जिसे वे 'सीमित कोड' कहते हैं; इसके विपरीत मध्यम वर्ग की भाषा सन्दर्भ से स्वतंत्र और सार्वभौमिक होती है, जिसे वे 'विस्तृत कोड' कहते हैं।[15]

हमने ऊपर चर्चा की कि अनुसूचित जनजाति की विद्यार्थी को प्राथमिक कक्षाओं में अपने घर की भाषा में शिक्षण के अवसर मिलने पर भी

15. सेडोवनिक, ए (2001)। 'बासिल बर्नस्टाइन : प्रॉसपेक्ट्स'। *द क्वार्टरली रिव्यू ऑफ़ कम्पैरेटिव एज्युकेशन, XXXI(4)*, 687।

अगले 2-4 बरसों में उसे प्रादेशिक भाषा और फिर माध्यमिक कक्षाओं की सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद अँग्रेज़ी आत्मसात करनी होती है। यहाँ भाषा का तात्पर्य शब्दकोशीय अर्थ-ग्रहण तक सीमित नहीं है, बल्कि जैसा बर्नस्टाइन इंगित करते हैं, उस बालिका को अगर स्कूल में बने रहना और उच्च शिक्षा प्राप्त करनी हो तो पहले प्रादेशिक और फिर अँग्रेज़ी भाषा में अर्थबोध के ढाँचे एवं विस्तृत कोड को आत्मसात करना होगा। यानी उसे अपने भाषाबोध के सन्दर्भ-आधारित और विशिष्टतापरक 'सीमित कोड' वाले ढाँचे से बाहर निकलकर प्रादेशिक और अँग्रेज़ी भाषा के सन्दर्भ से स्वतंत्र और सार्वभौमिक 'विस्तृत कोड' वाले भाषाई स्वरूप से अन्तरंग होना होगा। पाठकों को पढ़ने में यह जितना कठिन लग रहा है, उससे कहीं अधिक मुश्किल भाषाओं के वर्ग विभाजन की खाई को सफलतापूर्वक पार करके सत्ता की भाषा को व्यवहार में अंगीकार करना है।

मसला भाषाओं की सामाजिक हैसियत का भी है। जनजातीय समुदाय उत्पीड़न, दमन और उपेक्षा का शिकार रहे हैं। ज़ाहिर है कि जनजातीय भाषा बोलने वाले व्यक्तियों की सामाजिक-राजनैतिक हैसियत मानक कन्नड़, हिन्दी या अँग्रेज़ी बोलने वाले व्यक्तियों से कम मानी जाती है। शालेय आचार-व्यवहार, संस्कृति, पाठ्यपुस्तकें और अधिकांशतया शिक्षकों की भाषा वही होती है जो उत्पीड़क और दमनकर्ता की रही है। अनुसूचित जनजाति की विद्यार्थी से अपेक्षा की जाती है कि शाला में आते ही, या अगर वहाँ बहुभाषी शिक्षा पद्धति है तो फिर 2-4 बरसों में, अपनी भाषा छोड़कर सत्ता की भाषा अपना ले। शोषित वर्ग द्वारा अपने उत्पीड़क का भाषाबोध अपनाने की प्रक्रिया से गुज़रते हुए उसे न सिर्फ़ हज़ारों बार विफलता और निराशा के दौर से गुज़रना होता है, बल्कि सहपाठियों एवं शिक्षकों की नज़रों में उपहास का पात्र बनना और अपमानित भी होना होता है।

ज्ञान और अज्ञान

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के विषय पर बना *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र* कहता है : "शिक्षा के लक्ष्य समाज की अपेक्षित सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से निर्देशित होते हैं।"[16] हम जानते हैं कि ऐतिहासिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं के ज़रिए जनजातीय समुदाय हाशियाकृत किए गए हैं। शिक्षा के लक्ष्य जिन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से निर्धारित होते हैं, उनमें जनजातीय समुदायों की हैसियत सीमित है। ज़ाहिर है कि उनके पारम्परिक ज्ञान को मान्यता मिलना आसान नहीं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 को भारत के शैक्षिक इतिहास में एक प्रगतिशील क़दम माना जाता है। उसके तमाम दस्तावेज़ों

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

16. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली। (2009)। 'पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें'। *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र,* 25।

में जनजातियों, उनके आचार-व्यवहार, संस्कृति, परम्परा, भाषा, ऐतिहासिक शोषण, अलगाव, विस्थापन आदि का सहानुभूतिपूर्वक उल्लेख है। इन समुदायों से आने वाले बच्चों के स्कूली शिक्षा से वंचित रहने, पिछड़ने और बाहर होने के प्रति सरोकार है और ऐसे बच्चों के स्कूली वातावरण में समावेशीकरण के अनुकूल माहौल बनाने, पाठ्यपुस्तकों के पाठों और चित्रों को पूर्वाग्रह मुक्त और समतामूलक होने, स्कूल के उत्सवों-त्योहारों, आदि में प्रतीकों को समावेशी बनाने व शिक्षिकाओं से संवेदनशील होने की अपेक्षाओं का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। लेकिन जनजातियों के मूल्यबोध, उदाहरणार्थ– 'सामुदायिकता' के बदले आधुनिक मूल्य 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' व 'लोकतंत्र', को शिक्षा के लक्ष्यों में स्थान मिला है। पाठ्यचर्या में उस बच्ची के पारम्परिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं है, जो उसके जनजातीय समुदाय में सदियों से विकसित होता रहा है। पाठ्यचर्या में सिर्फ़ यही कोशिश नज़र आती है कि जनजाति से आने वाली बच्ची कैसे आधुनिक ज्ञान और आधुनिक मूल्यों को अंगीकार कर ले। इसे समावेशीकरण का नाम देते हुए शैक्षिक प्रक्रियाओं को थोड़ा कम कठोर, कम कठिन और थोड़ा कम कड़वा बनाने की कोशिशें की गई हैं।

स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाए जाने वाले पाठों में आमतौर पर शहरी मध्यम वर्ग की जीवनदृष्टि झलकती है। विगत एक-दो दशकों से निम्नवर्गीय और ग्रामीण परिवेश की छवियों को पाठों में शामिल करने की जद्दोजहद की गई है, जो स्वागतयोग्य है और इसके नतीजे भी उत्साहवर्धक हैं, लेकिन इसकी सीमाएँ हैं। इतिहास, समाजशास्त्र, भौतिकी या रसायन विज्ञान जैसे विषयों में 'जनजातीय ज्ञान' की कितनी जगह है, इस सवाल पर चर्चा करने से पहले यह सवाल उठ खड़ा होगा कि क्या 'जनजातीय ज्ञान' भी कुछ होता है? घर और गाँव में बड़े-बुजुर्गों की बताई बातें शाला के ज्ञान से जुदा होती हैं। बेशक उसमें तथाकथित अन्धविश्वास, लोक मान्यताओं का पुट हो सकता है, इसलिए उसे 'आधिकारिक ज्ञान' मानने में शिक्षाविद् संकोच करते हैं। लेकिन सदियों से जनजातियाँ अपने बीमारों का इलाज कर रही हैं, खेती, बागवानी कर रही हैं, पशुपालन और पशुओं की नस्लों का संवर्धन कर रही हैं, अपनी संस्कृति, साहित्य और कलाओं को न सिर्फ़ सँजोकर रख रही हैं बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसे परिमार्जित भी करती आई हैं। लकड़ी की कारीगरी, धातुकर्म, कपड़ा बुनने, रँगने और पहनने के सलीक़े का विकास... क्या ये सब 'ज्ञान' नहीं? शिकार करने और मछली पकड़ने या जंगल से फल, फूल और पत्तियाँ इकट्ठा करने का काम बग़ैर किसी विज्ञान और तकनीक के किया जा सकता है? पाठ्यपुस्तकों में जिस विज्ञान को आधिकारिक ज्ञान बताकर पढ़ाया जा रहा है उसी के चलते रासायनिक उर्वरक, जीवाश्म ऊर्जा, संचार क्रान्ति, बेलगाम बाज़ार, आत्मकेन्द्रित व्यक्तिवाद तथा अलगावकारी राष्ट्रवाद का आविष्कार हुआ है। क्या हम दावा करने की स्थिति में हैं कि मानव जाति के लिए आधुनिक विज्ञान जनजातियों के पारम्परिक ज्ञान– जिसे पाठ्यपुस्तकें ज्ञान मानती ही नहीं– से श्रेष्ठ है?

शिक्षा के लक्ष्य

शिक्षा के लक्ष्य यानी आधुनिक ज्ञान और मूल्यों का अंगीकरण, और शिक्षा की प्रक्रिया– यानी सचेत-संवेदनशील समावेशीकरण की कोशिशें, रूपान्तरित होकर पाठ्यपुस्तकों में सम्भ्रम व कक्षा-कक्ष में दिशाहीनता की शक्लों में उजागर होती हैं। सचेतनता और संवेदनशीलता के बावजूद इन पाठ्यपुस्तकों के ज़रिए जनजातीय समुदाय से आई विद्यार्थी को यह जवाब नहीं मिलता कि पढ़-लिखकर वह अपना गुज़र-बसर जंगल में शिकार और फल-फूल-पत्ते इकट्ठा करते हुए करे, जंगल काटकर खेती करे, या अपना पारम्परिक आवास छोड़कर शहर में अजनबियों के बीच बस जाए? इस मूलभूत सवाल का जवाब न मिलने की दो वजहें नज़र आती हैं। एक तो यह कि जनजातियों

के पारम्परिक रहन-सहन, अर्थव्यवस्था, मूल्य-मान्यताएँ और ज्ञान का शिक्षा के लक्ष्यों व उनकी प्राप्ति के लिए बनी पाठ्यचर्या में कोई स्थान नहीं है। इसे विनम्रतापूर्वक अज्ञान क़रार देकर शिक्षा के विमर्श से ओझल कर दिया गया है। दूसरे, आधुनिक मूल्यों— जो आमतौर पर जनजातियों के परम्परागत मूल्यों के मुख़ालिफ़ या अलहदा होते हैं— को अपनाने को शिक्षित होना माना जाता है। इसलिए शिक्षा के विमर्श से लेकर विकास की राष्ट्रीय नीति बनाने तक में यह भ्रम बना रहता है कि जंगलों को बचाया जाए, जंगल काटकर खेती का रकबा बढ़ाया जाए या फिर खदानों और उद्योगों का विकास करने के लिए जनजातीय बसाहटों के हरित आवरण की बलि दी जाए?

समाधान के रास्ते

ऊपर हमने जायज़ा लिया और पाया कि भारत में जनजातियों की शैक्षिक प्रगति के लिए सरकारी और ग़ैर-सरकारी स्तर पर की जा रही कोशिशें अपेक्षानुरूप नतीजे नहीं दे पाई हैं। लिहाज़ा पुनर्विचार की ज़रूरत है। आधुनिक लोकतंत्रात्मक राष्ट्र-राज्यों में प्रत्येक समुदाय को अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप निर्णय करने का सीमित अधिकार ही मिलता है। जनजातीय समूहों के पास इतनी राजनैतिक शक्ति नहीं कि वे मुख्यधारा को अपनी शर्तों पर पुनर्परिभाषित कर सकें। सार्वजनिक शिक्षा का प्रचलित स्वरूप है— सरकार के हाथ में शिक्षा का नियंत्रण। इसमें यह मान्यता अन्तर्निहित है कि लोकतांत्रिक राष्ट्र-राज्यों में जनमत से चुनी हुई सरकारें सार्वजनिक कल्याण के कार्य करती हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक विविधताओं वाले भारत जैसे राष्ट्र-राज्यों में विविध समाजों की आकांक्षाएँ परस्पर भिन्न या कभी-कभी विपरीत भी होती हैं। स्वाभाविक है कि सरकारी नियंत्रण वाली एकरूप शिक्षा सबका समान भला नहीं कर सकती।

क्या हम यह कल्पना कर सकते हैं कि सार्वजनिक स्कूली शिक्षा को सरकार के नियंत्रण से मुक्त करके समुदायों के हाथ दे दिया जाए? यहाँ समुदायों के नियंत्रण में शिक्षा देने का आशय यह है— शिक्षा के लक्ष्यों का निर्धारण, पाठ्यचर्या निर्माण, कक्षा-कक्ष की प्रक्रियाओं की पुनर्रचना से लेकर आकलन और प्रमाणीकरण तक और शाला का स्थान, समय, अवकाश जैसे प्रबन्धकीय निर्णयों से लेकर शिक्षकों की अर्हता-योग्यता तक का फ़ैसला समुदायों के ज़िम्मे हो। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान औपनिवेशिक शिक्षा के बरअक्स राष्ट्रीय शिक्षा को खड़ा करने के सफल प्रयास स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हो चुके हैं। वर्तमान में 'वैकल्पिक स्कूल' के ढाँचों के भीतर ऐसे कई सफल प्रयोग भारत में चल रहे हैं जो शासन के नियंत्रण से काफ़ी हद तक मुक्त हैं। सार्वजनिक शिक्षा को समुदायों के हाथ में सौंपने से विविध सामाजिक-सांस्कृतिक आकांक्षाओं को फलने-फूलने का मौक़ा मिलेगा, बहुलतावाद को बढ़ावा मिलेगा और लोकतंत्र मज़बूत होगा।

शिक्षा का ज़िम्मा समुदायों को सौंपना निहायत अव्यवहारिक नज़र आए तो एक और काम है जो किया जा सकता है। शिक्षा के लक्ष्य निर्धारण और पाठ्यचर्या निर्माण के दौरान जनजातियों के पारम्परिक ज्ञान को आधिकारिक ज्ञान का स्थान मिले। वर्तमान विमर्श में जनजातीय पारम्परिक ज्ञान को लोक विज्ञान या वैकल्पिक जीवन दृष्टि आदि आलंकारिक शब्दावली का इस्तेमाल करते हुए शिक्षा की मूल धारा से अलग रखा जाता है। प्राथमिक शाला पूर्ण करने के बाद जिस प्रकार विद्यार्थियों को आगे पढ़ने के लिए भूगोल या भौतिकी चुनने का अवसर मिलता है, वैसे ही वे चिकित्सा का बैगा विज्ञान और सृष्टि-उत्पत्ति का सन्थाली सिद्धान्त पढ़ने का मौक़ा क्यों नहीं पा सकते? आधुनिक ज्ञान के ढाँचों के भीतर या उसके समानान्तर पारम्परिक ज्ञान के ढाँचों को समान स्वीकृति देना और सम्मानपूर्वक उसे पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाना शायद समय का चक्र उलटा घुमाने जैसे लगें। हालाँकि, आधुनिक दौर में प्रचलित रासायनिक खेती, औद्योगिक प्रदूषण, व्यस्त और तनावपूर्ण दिनचर्या आदि ने

दुनिया को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के नकारात्मक पहलुओं और सीमाओं का अहसास कराया है, साथ ही आधुनिक शिक्षा व्यवस्था शत-प्रतिशत बच्चों की सफलतापूर्वक स्कूली शिक्षा पूर्ण करना सुनिश्चित नहीं कर पाई है। इन विफलताओं पर वस्तुपरक व तार्किक पुनर्विचार तो किया जाना चाहिए न!

एक रास्ता यह हो सकता है कि प्राथमिक कक्षाओं से सभी बच्चों– जिनमें जनजातीय समुदायों से आने वाले बच्चे भी शामिल हों– को अँग्रेज़ी माध्यम में शिक्षा दी जाए। सरसरी नज़र में भले यह अव्यवहारिक लगे, लेकिन ज़्यादा अव्यवहारिक यह होगा कि देश के सभी बच्चों को मातृभाषा, या कम-से-कम प्रादेशिक भाषा में स्कूली शिक्षण मिले। राजनेता, अफ़सर, ग़ैर-सरकारी संगठनों के कार्यकर्ता और सरकारी शालाओं के शिक्षक-शिक्षिकाओं में से अधिकांश के बच्चे अँग्रेज़ी माध्यम स्कूलों में पढ़ रहे हैं। इसलिए वे शायद ही इस प्रस्ताव को स्वीकार करें कि स्कूली शिक्षा अनिवार्य रूप से मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा में हो। अपने बच्चों के लिए अँग्रेज़ी शिक्षा और जनजातीय बच्चों के लिए मातृभाषा और बहुभाषिता की पैरवी ब्राह्मणवाद की याद दिलाती है, जब ऊँची मानी जाने वाली जातियों ने संस्कृत भाषा और उसके ज़रिए तत्कालीन ज्ञान तक सामान्यजन की पहुँच असम्भव बना रखी थी। हमें सोचना चाहिए कि आज अँग्रेज़ी को पहुँच से दूर रखकर कहीं ज्ञान पर एकाधिकार की ब्राह्मणवादी प्रक्रिया तो नहीं दोहराई जा रही?

जनजातीय समुदायों के विद्यार्थियों का ऊँची कक्षाओं में पिछड़ने और शालात्याग का एक बड़ा कारण अँग्रेज़ी में हाथ तंग होना है। शहरों की वर्तमान बनावट में बहुभाषिता एक सामाजिक वास्तविकता है। आम शहरी अँग्रेज़ी माध्यम स्कूल में किसी मध्यमवर्गीय विद्यार्थी के शाला में बने रहने, बोर्ड परीक्षाएँ पास करने, उच्च शिक्षा और आधुनिक रोज़गार प्राप्त करने के अवसर घर की भाषा या बहुभाषी कक्षा में प्राथमिक शिक्षा पाई अनुसूचित जनजाति की किसी विद्यार्थी के मुक़ाबले ज़्यादा होते हैं। अर्थात अँग्रेज़ी माध्यम में पढ़ने से विद्यार्थी की शैक्षिक और व्यावसायिक सफलता के मौक़े बढ़ जाते हैं। इसलिए अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों को घर की भाषा या बहुभाषी शिक्षण देने का आग्रह छोड़ने की ज़रूरत है। जनजातीय समुदायों से आने वाले बच्चों के स्कूली शिक्षा में पिछड़ने के सामाजिक-आर्थिक कारण भी हैं, जिनकी पूर्ति के लिए शासन की ओर से छात्रवृत्तियाँ व अन्य सुविधाएँ दी ही जा रही हैं।[17] ग़ैर-सरकारी संगठन भी सांस्कृतिक पूँजी बढ़ाने की दिशा में कार्यरत हैं। इसलिए उचित होगा कि सभी सार्वजनिक स्कूल अँग्रेज़ी माध्यम शालाओं में रूपान्तरित हों और अपने घोषित लक्ष्य– नई पीढ़ी को आधुनिक मूल्यों व आचार विचारों में दीक्षित करना– की प्राप्ति का सघन प्रयास करें। जनजातीय भाषा, परम्परा और संस्कृति की रक्षा का ज़िम्मा समुदायों पर छोड़ दें।

17. बोर्दियु, पी (सम्पा.)। (1986)। फॉर्म्स ऑफ़ कैपिटल। *हैंडबुक ऑफ़ थियरी एंड रिसर्च फॉर द सॉशियोलॉजी ऑफ़ एजुकेशन* (पृष्ठ 241–258)। ग्रीनवुड।

अमित कोहली घुमक्कड़ी करने और पढ़ने के शौक़ीन हैं। तक़रीबन 15 साल एकलव्य फ़ाउण्डेशन के साथ विविध स्तरों पर काम किया है। शिक्षा के इतिहास, डिस्कूलिंग एवं वैकल्पिक शिक्षा में विशेष रुचि है। अमित स्वयं को वैचारिक रूप से गाँधीजी के क़रीब पाते हैं।
सम्पर्क : amt1205@gmail.com